अध्याय 4

उन्नति रोकने के लिए शत्रु का प्रयास

मन्दिर का पुनर्निर्माण करने के लिए यहूदी लोग अपनी मातृभूमि लौट आए थे। अध्याय 3 में वर्णित आशाजनक आरंभ के पश्चात, अध्याय 4 यह वर्णन करता है कि उनको स्थानीय लोगों के विरोध का सामना करना पड़ा था और पन्द्रह या सोलह वर्ष तक फारस के राजा दारा के शासनकाल तक उन्हें उस परियोजना को रोके रहना पड़ा था।

इसके अतिरिक्त, एज्रा 4 यहूदा के पड़ोसियों द्वारा उनके प्रयासों में विघ्न डालने का विश्लेषण करता है। एक बार यह विघ्न क्षयर्ष राजा के शासनकाल के दौरान और दूसरी बार अर्तक्षत्र राजा के शासनकाल के दौरान डाला गया था। वास्तव में, एज्रा 4 से नहेम्याह की पुस्तक के अंत तक, विवाद पाया जाता है। यहूदियों ने जो भी परमेश्वर के लिए करने का प्रयास किया शत्रुओं ने सदैव उसको चुनौती दी।[1]

इस अध्याय की सबसे विचित्र बात इसका अनुक्रम है। यह पिछली अध्याय में वर्णित घटना को क्रमशः जारी रखता है (4:1-5), इसके पश्चात कुछ दशकों बाद घटित हुई घटना का वर्णन करता है (4:6), और इस अध्याय के प्रथम अनुच्छेद में कही गई विषय वस्तु में लौटने से पहले (4:24), उस घटना के तीस वर्ष बाद जो घटना घटित हुई थी, का संस्मरण करता है (4:7-23)। क्यों लेखक ने इस प्रकार की विचित्र अनुक्रम का प्रयोग किया था?

इस प्रश्न के प्रत्युत्तर में, दो तथ्यों पर विचार किया जाना चाहिए। (1) लेखक अनुक्रम के बारे में अस्पष्ट नहीं था। उसने सावधानीपूर्वक इस अध्याय में घटित घटनाओं का वर्णन किया है। उसने जानबूझकर 4:1-5 में पाए जाने वाले विरोध के उदाहरणों को यहाँ जोड़ा है। (2) लेखक मूल रूप से उन पाठकों को लिख रहा था जो मंदिर के पुनर्निर्माण के प्रयासों को जानते थे। इस लेख के प्रथम पाठक यहूदी थे जो मंदिर में आराधना करते थे। इस कहानी की परिणाम से इस कथा में पड़ी बाधा ने उन्हें किसी प्रकार के संदेह में नहीं छोड़ा होगा।

तब, इस कथा में, इन दो घटनाओं को सम्मिलित करने के पीछे लेखक का क्या उद्देश्य रहा होगा? उसका उद्देश्य पाठकों को उस देश के लोगों द्वारा परमेश्वर के लोगों के प्रति उत्पन्न वास्तविक खतरे को समझने में सहायता करना था। उनकी यहूदियों के प्रति शत्रुता इस सीमा तक बढ़ गई थी कि उन्हें लगभग नब्बे वर्षों तक उनके विरोध का सामना करना पड़ा! यह अनुभाग यह भी बताता है कि क्यों यहूदियों को अपने पड़ोसियों से अपनी सुरक्षा करना था।

कुस्रू के शासनकाल के दौरान विरोध (4:1-5)

[1]जब यहूदा और बिन्यामीन के शत्रुओं ने यह सुना कि बँधुआई से छूटे हुए लोग इस्राएल के परमेश्वर यहोवा के लिये मन्दिर बना रहे हैं, [2]तब वे जरुब्बाबेल और पूर्वजों के घरानों के मुख्य मुख्य पुरुषों के पास आकर उनसे कहने लगे, "हमें भी अपने संग बनाने दो; क्योंकि तुम्हारे समान हम भी तुम्हारे परमेश्वर की खोज में लगे हुए हैं, और अश्शूर का राजा एसर्हद्दोन जिसने हमें यहाँ पहुँचाया, उसके दिनों से हम उसी को बलि चढ़ाते भी हैं।" [3]जरुब्बाबेल, येशू और इस्राएल के पितरों के घरानों के मुख्य पुरुषों ने उनसे कहा, "हमारे परमेश्वर के लिये भवन बनाने में, तुम्हारा हम से कोई सम्बन्ध नहीं; हम ही लोग एक संग मिलकर फारस के राजा कुस्रू की आज्ञा के अनुसार इस्राएल के परमेश्वर यहोवा के लिये उसे बनाएँगे।" [4]तब उस देश के लोग यहूदियों को निराश करने और उन्हें डराकर मन्दिर बनाने में रुकावट डालने लगे, [5]और फारस के राजा कुस्रू के जीवन भर वरन् फारस के राजा दारा के राज्य के समय तक उनके मनोरथ को निष्फल करने के लिये वकीलों को रुपया देते रहे।

आयतें 1, 2. जब यहूदियों ने मन्दिर का निर्माण पुनः प्रारम्भ किया था तो पाठ स्थानीय लोगों द्वारा मन्दिर निर्माण में सहयोग दिए जाने का विश्लेषण करता है। दक्षिणी राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले दो गोत्र, **यहूदा** और **बिन्यामीन**, जिनका विशेष रूप से यहाँ वर्णन किया गया है, और जो बाबूल की बंधुवाई में चले गए थे; बंधुवाई उपरांत वापस लौटने वाले लोगों में सबसे अधिक संख्या उन्हीं की थी। शेष अन्य गोत्र के लोग थे जो 586 ई.पू. में मन्दिर के विनाश से पहले दक्षिणी राज्य में विस्थापित हो गए थे (2 इतिहास 30:11, 18, 19; 34:9)।

यहूदा के शत्रुओं ने **सुना** कि यहूदी लोग **मन्दिर बना रहे हैं।** यह वक्तव्य इस आयत को 3:13 से जोड़ता है, जो यह कहता है "ऊँचे शब्द से जय जयकार कर रहे थे, और वह शब्द दूर तक सुनाई देता था।"

चूंकि 4:10, 17 में "शोमरोन" का वर्णन पाया जाता है, तो आज, सामरी लोगों की पहचान यहूदियों के शत्रु के रूप में की जाती है। "सामरी" पंथ "प्राचीन यहूदी मत की उपशाखा" थी, जो पुराने नियम के केवल पाँच पुस्तकों को ही मान्यता देते थे। यद्यपि, "सामरियों" की यह पहचान, केवल "शोमरोन के निवासियों," से अधिक संकुचित है।[2] सामरी वे लोग थे जो अधिकांश इस्राएली लोगों को अश्शूर की बंधुवाई में ले जाने के बाद, खाली पड़े उत्तरी राज्य में अन्य देशों से लाकर बसाए गए थे।

इन लोगों ने कहा कि वे इस देश में **अश्शूर का राजा एसर्हद्दोन जिसने [उन्हें] यहाँ पहुँचाया** था, के दिनों में बसाए गए थे (681-669 ई.पू.)। इससे पहले एक अन्य अश्शूर के राजा, सार्गोन द्वितीय, ने उन्हें लगभग 722 ई.पू. में यहाँ पहुँचाया था।[3] उसने स्पष्ट रूप से इस्राएलियों की जगह विदेशी लोगों को स्थापन्न करने की नीति अपनाई (2 राजा. 17:6, 24-33) - यह एक ऐसी प्रणाली थी जिसे अन्य

अश्शूर के राजाओं ने भी जारी रखा। इस बात का दावा कि "एसर्हद्दोन के दिनों में" वहाँ लोगों को ले जाया गया था, सायरो-फिलिस्तीन आक्रमण की प्राचीन लेख के समतुल्य पाया जाता है। इस राजा ने सीदोन (उत्तरी दिशा की ओर) को हराया और वहाँ दूसरे लोगों को बसाया।[4]

जो लोग सामरिया में बसाए गए थे उन्होंने बंधुवाई से बचे इस्राएलियों के साथ अंतर्विवाह कर लिया था। एज्रा 4:4 में, वे "उस देश के लोग" संबोधित किए गए हैं, जिसका स्पष्ट अर्थ गैर-यहूदी (गैर-इस्राएली) है जो बन्धुआई से लौटने वाले यहूदियों के स्थानों में बस गए थे।[5]

वे क्यों यहूदियों के **शत्रु** कहे गए हैं? संभवतः उनको शत्रु इसलिए नहीं कहा गया था कि उन्होंने इस्राएलियों के साथ क्या किया था बल्कि उन्हें इसलिए शत्रु कहा गया था कि अब से आगे की ओर वे इस्राएलियों के साथ क्या करने जा रहे थे। आने वाले वर्षों में, वे इस्राएलियों को उनका लक्ष्य प्राप्त करने में, हर संभव बाधा डालने का प्रयास करेंगे। हो सकता है कि उनकी सहायता की अपील ठुकराने के बाद वे उनसे अप्रसन्न हुए होंगे। इसके अलावा (और संभवतः सबसे महत्वपूर्ण) कारण यह रहा होगा कि जब यहूदी लोग वापस लौटे थे तो उन्होंने उस देश के लोगों द्वारा प्रयोग की जाने वाली भूमि को उनसे वापस ले लिया था;[6] उनका विशाल भू-भाग अब घटकर संकुचित हो गया था। इसलिए, स्थानीय निवासी और क्षेत्रीय शासकों का नए आगन्तुकों के प्रति शत्रुता स्पष्ट है।

क्यों **जरूब्बाबेल** और अन्य यहूदी प्रधानों (जिनकी पहचान **इस्राएल के पितरों के घरानों के मुख्य पुरुष** के रूप में की गई है) ने स्थानीय निवासियों की सहायता को ठुकराया? संभवतः उनको यह लगा होगा कि जो उनकी सहायता करना चाहते हैं उनकी मंशा अच्छी नहीं रही होगी। यद्यपि यह बिल्कुल निश्चित था कि उन्होंने उनकी सहायता लेने से इसलिए इनकार किया था क्योंकि वे जानते थे कि जिन्होंने उनकी सहायता करने का प्रस्ताव रखा था वे सत्य **परमेश्वर** के अलावा अन्य देवी-देवताओं की उपासना किया करते थे (2 राजा. 17:29-34)।[7] यह यहूदी लोगों के लिए कोई मायने नहीं रखता था कि हाल ही में जिनका देश मूर्ति पूजा के कारण बंधुवाई में चला गया था, ऐसे लोगों को इस कार्य में सम्मिलित करें जो कालांतर में उनको प्रभावित कर यहोवा की आराधना करने से उनको दूर ले जा सकते थे।

आयत 3. यहूदी प्रधानों ने सहायता का प्रस्ताव रूखेपन से प्रत्युत्तर "नहीं, धन्यवाद" कहकर दिया। उन्होंने कहा, **"हमारे परमेश्वर के लिये भवन बनाने में, तुम्हारा हम से कोई सम्बन्ध नहीं।"** NIV के अनुसार उन्होंने कहा, "हमारे परमेश्वर के लिए भवन बनाने में तुम्हारा कोई भाग नहीं है।" NEB में लिखा है "जो घर हम अपने परमेश्वर के लिए बना रहे हैं उसमें तुम्हारा कोई संबंध नहीं है।" इस प्रकार, उन्होंने इस विचार धारा का खण्डन किया कि परमेश्वर की आराधना ने इन लोगों को विश्वासयोग्य यहूदी बनाया था। बंधुआई से लौटने वाले लोगों ने कहा कि **कुस्रू** ने उन्हें मन्दिर का पुनर्निर्माण करने का **आदेश** दिया था (देखें 1:1-4), जिसका यह तात्पर्य हुआ कि राजा का अधिकार पत्र उन्हें इस कार्य को सम्पन्न करने में दूसरों की सहायता लेने से मना करता है।

आयतें 4, 5. परिणामस्वरूप, **उस देश के लोगों** ने यहूदियों को **निराश** किया[8] और उन्हें **डराकर** मन्दिर **बनाने** में **रुकावट** डालने लगे। कार्य में यह **रुकावट कुस्रू के जीवन भर** (539-530 ई.पू.) से **राजा दारा के राज्य के समय तक** (522-486 ई.पू.) बना रहा - अर्थात्, लगभग 535 से 520 ई.पू. तक।[9] यहूदा के शत्रुओं का अंत कैसे हुआ? पाठ इसका विश्लेषण नहीं करता है, यह केवल इतना बताता है कि उन्होंने **उनके मनोरथ को निष्फल करने के लिये वकीलों को रुपया देते रहे**। हम केवल इतना अनुमान लगा सकते हैं कि उन्होंने अधिकारियों को घूस दिया, विरोध करने वालों को किराये पर खरीदा, आपूर्तियां रोकी, मजदूरों को धमकाया, और अगले पन्द्रह या सोलह वर्षों तक घृणित शब्दों और हिंसक कार्यों के द्वारा मन्दिर निर्माण में बाधा पहुँचाया।[10] अंततः, हाग्गै की पुस्तक के अनुसार, हतोत्साहित यहूदियों ने मन्दिर निर्माण का कार्य छोड़ दिया और फिर वे स्वयं अपना घर बनाने लगे (हाग्गै 1:1-4)।

मन्दिर निर्माण के कार्य में विरोध का वर्णन आयत 24 तक जारी रहता है। यद्यपि, इससे पहले लेखक इस वृतांत के साथ आगे बढ़ता, उसने एक प्रकार का विराम चिह्न लगाया है, जिसमें दो अन्य राजाओं के शासनकाल के दौरान विरोध का संदर्भ पाया जाता है।

क्षयर्ष राजा के राज्य के दिनों में विरोध (4:6)

[6]क्षयर्ष के राज्य के आरम्भिक दिनों में उन्होंने यहूदा और यरूशलेम के निवासियों का दोषपत्र उसे लिख भेजा।

आयत 6. यहूदियों के विरुद्ध विरोध की शिकायत क्षयर्ष के राज्य **के आरम्भिक दिनों में** दोषपत्र लिखकर जताया गया।[11] यह घटना **उसके राज्य के आरम्भिक दिनों में**, लगभग 480 ई.पू. में घटित हुआ। इसके परिणाम के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है। स्पष्ट रूप से, इसका वर्णन यह बताने के लिए किया गया है कि किस प्रकार यहूदियों को अपना मिशन पूरा करने में बार-बार विरोधियों का सामना करना पड़ा था।

अर्तक्षत्र प्रथम के शासन के दौरान विरोध (4:7-23)

[7]फिर अर्तक्षत्र के दिनों में बिशलाम, मिथ्रदात और ताबेल ने और उसके सहयोगियों ने फारस के राजा अर्तक्षत्र को चिट्ठी लिखी, और चिट्ठी अरामी अक्षरों और अरामी भाषा में लिखी गई। [8]अर्थात् रहूम राजमंत्री और शिमशै मंत्री ने यरूशलेम के विरुद्ध राजा अर्तक्षत्र को इस आशय की चिट्ठी लिखी। [9]उस समय रहूम राजमंत्री और शिमशै मंत्री और उनके अन्य सहयोगियों ने, अर्थात् दीनी, अपर्सतकी, तर्पली, अफ़ारसी, एरेकी, बाबेली, शूशनी, देहवी, एलामी [10]आदि जातियों ने, जिन्हें महान् और प्रधान ओस्नप्पर ने पार ले आकर शोमरोन नगर में और महानद के इस पार के शेष देश में बसाया था, एक चिट्ठी लिखी। [11]जो चिट्ठी उन्होंने अर्तक्षत्र राजा को लिखी, उसकी यह नकल है – "राजा अर्तक्षत्र की सेवा

में: तेरे दास जो महानद के पार के मनुष्य हैं, तुझे शुभकामनाएँ भेजते हैं। 12राजा को यह विदित हो कि जो यहूदी तेरे पास से चले आए, वे हमारे पास यरूशलेम को पहुँचे हैं। वे उस दंगैत और घिनौने नगर को बसा रहे हैं; वरन् उसकी शहरपनाह को खड़ा कर चुके हैं और उसकी नींव को जोड़ चुके हैं। 13अब राजा को विदित हो कि यदि वह नगर बस गया और उसकी शहरपनाह बन गई, तब तो वे लोग कर, चुंगी, और राहदारी फिर न देंगे, और अन्त में राजाओं की हानि होगी। 14हम लोग तो राजमन्दिर का नमक खाते हैं और उचित नहीं कि राजा का अनादर हमारे देखते हो, इस कारण हम यह चिट्ठी भेजकर राजा को चिता देते हैं। 15तेरे पुरखाओं के इतिहास की पुस्तक में खोज की जाए; तब इतिहास की पुस्तक में तू यह पाकर जान लेगा कि वह नगर बलवा करनेवाला और राजाओं और प्रान्तों की हानि करनेवाला है, और प्राचीन काल से उसमें बलवा मचता आया है। इसी कारण वह नगर नष्ट भी किया गया था। 16हम राजा को निश्चय करा देते हैं कि यदि वह नगर बसाया जाए और उसकी शहरपनाह बन चुके, तब इसके कारण महानद के इस पार तेरा कोई भाग न रह जाएगा।" 17तब राजा ने रहूम राजमंत्री और शिमशै मंत्री और शोमरोन और महानद के इस पार रहनेवाले उनके अन्य सहयोगियों के पास यह उत्तर भेजा, "कुशल हो! 18जो चिट्ठी तुम लोगों ने हमारे पास भेजी वह मेरे सामने पढ़ कर साफ साफ सुनाई गई। 19मेरी आज्ञा से खोज किये जाने पर जान पड़ा है कि वह नगर प्राचीनकाल से राजाओं के विरुद्ध सिर उठाता आया है, और उसमें दंगा और बलवा होता आया है। 20यरूशलेम के सामर्थी राजा भी हुए जो महानद के पार से समस्त देश पर राज्य करते थे, और कर, चुंगी, और राहदारी उनको दी जाती थी। 21इसलिये अब इस आज्ञा का प्रचार कर कि वे मनुष्य रोके जाएँ और जब तक मेरी ओर से आज्ञा न मिले, तब तक वह नगर बनाया न जाए। 22चौकस रहो, इस बात में ढीले न होना; राजाओं की हानि करनेवाली वह बुराई क्यों बढ़ने पाए?" 23जब राजा अर्तक्षत्र की यह चिट्ठी रहूम और शिमशै मंत्री और उनके सहयोगियों को पढ़कर सुनाई गई, तब वे उतावली करके यरूशलेम को यहूदियों के पास गए और बलपूर्वक उनको रोक दिया।

आयत 7. यहूदियों के विरुद्ध एक और शिकायत **अर्तक्षत्र प्रथम** जिसने फारस से लगभग 465 से 424 ई.पू. में राज्य किया था, के दौरान किया गया। चूँकि राजा को लिखित शिकायत में आयत 8 में वर्णित नाम, इस शिकायत से जुड़े नामों से भिन्न है, तो इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि आयत 7 का दोषारोपण उस तरह का नहीं था, जैसे 4:8-23 में व्याख्या किया गया है।[12]

एज्रा का लेखक **बिशलाम, मिथ्रदात और ताबेल और उसके सहयोगियों** द्वारा लिखे **चिट्ठी** से परिचित था। स्पष्टतया, इस बात पर प्रश्न उठाया जाता है कि इन नामों को कैसे समझा जाए। REB इसका अनुवाद इस प्रकार करता है, "ताबेल और उसके सभी सहयोगी, मिथ्रदात के सहमति से।" NAB में इस प्रकार अनुवाद किया गया है, "मिथ्रदात ने ताबेल और उसके शेष अधिकारियों के सहमति से लिखा।"

लेखक को मालूम था कि यह चिट्ठी **अरामी भाषा,** जो उस समय का अंतरराष्ट्रीय राजनयिक भाषा था, **लिखा गया** था। वह इस बात से भी अवगत था कि जब यह फारस के राजा को पढ़ कर सुनाया गया था तो यह **अरामी भाषा से अनुवाद किया गया** था। इसके अलावा प्रथम शिकायत के बारे में और जानकारी उपलब्ध नहीं है।

आयत 8. यहूदियों के विरुद्ध दूसरी शिकायत, अर्तक्षत्र प्रथम के शासनकाल के दौरान, एवं इसके प्रति राजा का प्रत्युत्तर, 4:8-23 में लिखा **किया गया है।** इस बार, यहूदियों के शत्रु यरूशलेम की "शहरपनाह" के निर्माण का विरोध कर रहे थे, न कि मन्दिर की पुनर्निर्माण का (4:12)। संभवतः, जिस घटना का यहाँ वर्णन किया गया है वह लगभग 445 ई.पू. में, मन्दिर की पुनर्निर्माण के कई वर्षों बाद, घटित हुआ होगा। देश के लोगों द्वारा फारस के राजा को भेजे गए इस विरोध ने उसे यहूदियों की इस परियोजना को "रोकना" पड़ा (4:21)।

एज्रा 4:8-6:18, के साथ-साथ 7:12-26, इब्रानी भाषा के बजाय, अरामी भाषा में लिखा गया है, संभवतः क्योंकि पुस्तक की इस भाग का अधिकांश हिस्सा सीधा अरामी दस्तावेज से नकल किया गया था। इससे लगा हुआ अनुच्छेद भी अरामी भाषा में है, संभवतः यह लेखक और पाठकों के लिए "एक भाषा से दूसरे कई अन्य भाषाओं में परिवर्तन करने" से आसान था।[13]

लेखक ने **यरूशलेम के विरुद्ध** लिखे चिट्ठी का परिचय कराया जिसको वह संदर्भित करने वाला था। इस चिट्ठी के लेखक का नाम **रहूम राजमंत्री** है। रहूम ने **शिमशै मंत्री**, जो सचिव के समान कार्य करता था, के वास्तविक कहे **वचनों** को चिट्ठी के स्वरूप में लिखा।

आयतें 9, 10. चिट्ठी 4:9-16 में पाया जाता है, जिस प्रकार की औपचारिक्ताओं के साथ यह प्रारंभ होता है वह आधुनिक व्यावसायिक चिट्ठियों (वापसी पता और चिट्ठी में लिखे जाने वाला पता) के आगे बढ़ जाता है। जिन्होंने चिट्ठी भेजा वे उस प्रांत के अधिकारियों के साथ **रहूम**, **शिमशै** और **उनके ...** सहयोगी हैं। इनमें सब देशों के लोग जिन्हें **महान् और प्रधान ओस्नप्पर ने पार ले आकर शोमरोन नगर में और महानद के इस पार के शेष देश में बसाया था।** "ओस्नप्पर" संभवतः "अशुरबेनीपाल" ("Ashurbanipal" [NIV]) को संदर्भित करता है, जो अश्शूर का आखिरी महान राजा था (669-631 ई.पू.)। उसने बाबूल और एलाम देश से लोगों को महानद के पश्चिम की ओर सायरो-पलिस्तीन देश में बसाया था। इस "क्षेत्र"[14] ("क्षत्रप") को "महानद के उस पार" के नाम से जाना जाता था और एज्रा की पुस्तक (4:10, 11, 16, 17, 20; 5:3, 6; 6:6, 8, 13; 7:21, 25; 8:36) और नहेम्याह की पुस्तक (नहेम्य. 2:7, 9; 3:7) में इसका कई बार वर्णन किया गया है।

इस परिचय के साथ, चिट्ठी लिखने वालों ने दो तथ्यों को साधने का प्रयास किया थाः यह कि चिट्ठी उस प्रांत के प्रधानों की एक मत दृष्टिकोण अभिव्यक्त करता है और यहूदियों के वापसी के समय उनका देश में उपस्थिति व स्वयं के बचाव का विश्लेषण करता है। वे उस देश में इसलिए उपस्थित थे क्योंकि किसी बड़े राजा

(फारस के राजा के समान) ने उनको वहाँ बसाया था।

आयत 11. लेखक जब लिख रहा था तो उसके पास उस **चिट्ठी की एक नकल** थी। औपचारिक अभिवादन, जैसे आमतौर पर ऐसे चिट्ठियों में पाया जाता है, प्राप्तकर्ता और प्रेषक का पहचान करती है: **"राजा अर्तक्षत्र की सेवा में: तेरे दास जो महानद के पार के मनुष्य हैं।"**

आयत 12. इस चिट्ठी की मुख्य विषय ने **राजा** (अर्तक्षत्र प्रथम) को अवगत् कराया कि **जो यहूदी तेरे पास से चले आए, वे हमारे पास यरूशलेम को पहुँचे हैं। वे उस दंगैत और घिनौने नगर को बसा रहे हैं।** प्रमाणिक तौर पर ये वे यहूदी नहीं हैं जो जरूबाब्बेल की अगुआई में लौटे थे, बल्कि ये वे हैं जो कालांतर में "यरूशलेम" को लौट आए थे (8:1-20)। विशेष रूप से, चिट्ठी के अनुसार वे यरूशलेम नगर की **शहरपनाह** ... **खड़ा कर** रहे थे, और वे उस कार्य को समाप्त करने ही वाले थे।

आयत 13. इसके साथ ही, चिट्ठी यह कहता है कि यदि वह नगर बस गया और उसकी शहरपनाह बन चुकी, तब तो वे लोग कर, चुंगी और राहदारी फिर न देंगे, जो वे यरूशलेम से प्राप्त करते थे और अन्त में राजाओं की हानि होगी। शहरपनाह बनकर तैयार होने से राजाओं को चुंगी से होने वाले लाभ से हानि उठानी पड़ेगी।

आयतें 14, 15. अपनी तर्क को प्रमाणित करने के लिए, चिट्ठी लिखने वाले ने कहा कि तेरे पुरखाओं के इतिहास की पुस्तक में खोज की जाए; तब इतिहास की पुस्तक में तू यह पाकर जान लेगा कि वह नगर बलवा करने वाला और राजाओं और प्रान्तों की हानि करने वाला है, और प्राचीन काल से उस में बलवा मचता आया है। **और ... इसी कारण वह नगर नष्ट भी किया गया था।** विदित हो कि चिट्ठी लिखने वाले ने परिस्थिति को भांपा, कि यदि राजा ने शरहरपनाह को बनाने दिया, तो यहूदियों का इस क्षेत्र में अधिपत्य हो जाएगा और फारसियों का न केवल इस छोटे यहूदा प्रांत से अधिकार हट जाएगा - बल्कि वे उस सम्पूर्ण क्षत्रप, जो "महानद के उस पार" का कहलाता है, से अपना अधिकार खो बैठेंगे। चिट्ठी लिखने वाले को केवल अर्तक्षत्र की भलाई की ही चिंता थी। उन्होंने कहा कि उनको उसे चेताने के लिए वे बाध्य हैं क्योंकि वे **राजमन्दिर का नमक खाते हैं**[15] अर्थात् वे राजा की सेवा करते हैं, और इसलिए यह उनके लिए **उचित नहीं होगा** कि वे यहूदियों को **राजा** का **अनादर** करने दें।

चिट्ठी सत्य और झूठ का मिला हुआ मिश्रण था। यह सत्य था कि भूतकाल में यरूशलेम और यहूदा आक्रमणकारियों के प्रति विद्रोह किया करते थे, विशेषकर बाबूल द्वारा विनाश करने से पहले; और यह सत्य है कि विद्रोह के कारण यरूशलेम को पूरी **नष्ट** कर दिया गया था।

आयत 16. यह भी सत्य है कि भूतकाल में, विशेषकर दाऊद और सुलैमान के शासनकाल के दौरान, इस क्षेत्र में इस्राएल का अधिपत्य था। फिर भी, यह बात सत्य से परे था कि बंधुआई से लौटा एक छोटा एवं दुर्बल झुण्ड, सामर्थशाली फारसी साम्राज्य के लिए खतरा हो सकता था, या यदि यहूदियों ने शहरपनाह बना लिया तो राजा को किसी प्रकार का चुंगी से हानि हो सकता था। चिट्ठी लिखने वाले की

प्राथमिक चिंता फारसी राजा को सम्मान दिया जाना नहीं था या इस बात की कोई चिंता नहीं था कि राजा का **महानद की उस पार के देशों में अधिकार नहीं होगा**। बल्कि, वे इस बात से घबराए हुए थे कि यहूदियों का सामर्थशाली होने का तात्पर्य यह था कि वे अपनी सम्पत्ति, सम्मान, सामर्थ और सम्पन्नता से हाथ धो बैठेंगे।

आयत 17. जिन्होंने राजा को चिट्ठी लिखा था उनको संबोधित करते हुए राजा का प्रत्युत्तर प्रारंभ होता है: **रहूम राजमंत्री और शिमशै मंत्री और शोमरोन और महानद के इस पार रहनेवाले उनके अन्य सहयोगियों के पास यह उत्तर भेजा।** इस प्रत्युत्तर में सामान्य अभिवादन का शब्द **"कुशल हो"** भी सम्मिलित था।

आयत 18. तब राजा ने यह अभिस्वीकृति प्रकट किया कि **चिट्ठी** उसको पढ़कर सुना दी गई है। इस चिट्ठी को अरामी से फारसी भाषा में **अनुवाद किया** गया था ताकि राजा उसे बेहत्तर समझ सके।

आयतें 19, 20. रहूम, शिमशै और उनके सहयोगियों के आग्रह पर, इस नगर के विषय में **खोज किया गया** और **यह पाया गया** कि यरूशलेम में **दंगा और बलवा होता आया है**। चिट्ठी इस बात की भी संस्तुति प्रकट करता है कि इस नगर पर **सामर्थी राजाओं** ने राज्य किया था, बल्कि महानद के पार से समस्त देश पर राज्य करते थे, और कर, चुंगी, और राहदारी उनको दी जाती थी, जो अब फारस को चुंगी देता है।

फारसियों ने इस्राएल की भूतकालीन महिमा के प्रति संस्तुति प्रकट किया था। यहूदी पाठकों को यह दाऊद और सुलैमान के राज्य के दिनों का खट्टा मीठा यादें संस्मरण कराती है: मीठें यादें इसकी महानता के बारे में था और यह यादें कड़वी इसलिए लग रही थी क्योंकि अब इसकी गिनती महानत्तम देशों नहीं था।

आयत 21. परिणामस्वरूप, राजा की दूसरी आज्ञा निकाले जाने तक कार्य रोक दिए जाने की आज्ञा भेजी गई। इस आज्ञा के शब्द निश्चय ही अवसरानुकूल था। फारस के राजा की आज्ञा को बदला नहीं जा सकता था (एस्तेर 1:19; 8:8; दानियेल 6:8, 12, 15); लेकिन, परमेश्वर की योजना के अनुसार, अर्तक्षत्र ने कालांतर में यहूदियों को कार्य प्रारंभ करने हेतु अवसर प्रदान किया था।

आयत 22. राजा ने अपनी चिट्ठी यह कहते हुए समाप्त की कि उस देश के लोग यह सुनिश्चित् कर लें कि उसकी आज्ञा का पूरा-पूरा पालन किया जाए: "चौकस रहो, इस बात में ढीले न होना; राजाओं की हानि करनेवाली वह बुराई क्यों बढ़ने पाए?"

आयत 23. जिन्हें राजा का उत्तर मिला था वे उसके निवेदन के अनुसार कार्य करने के लिए प्रसन्न थे। **तब वे** सेना (जिसमें फारस के सिपाही भी थे) लेकर **उतावली करके यरूशलेम को** गए, और **यहूदियों** को बलपूर्वक कार्य करने से रोक दिया। यद्यपि अर्तक्षत्र ने यहूदियों के शत्रुओं को उस क्षण तक निर्मित शहरपनाह को ढाने का आदेश नहीं दिया था, लेकिन ऐसा लगता है कि उन्होंने उनके शहरपनाह भी तोड़ दिया था।

दारा के शासनकाल तक विरोध का परिणामः मन्दिर का कार्य रुक गया था (4:24)

[24]तब परमेश्वर के भवन का काम, जो यरूशलेम में है, रुक गया; और फारस के राजा दारा के राज्य के दूसरे वर्ष तक रुका रहा।

आयत 5 में लगभग 535 ई.पू. में रुकी हुई कहानी को अध्याय 4 का अंतिम आयत पुनः प्रारंभ करता है।

आयत 24. इस समय परमेश्वर के शत्रुओं को अवसर मिला कि उन्होंने **परमेश्वर के भवन का काम, जो यरूशलेम में है,** रुकवा दिया था। दारा प्रथम (लगभग 520 ई.पू.) के शासनकाल के लगभग पन्द्रह या सोलह वर्षों तक, मन्दिर **के** पुनर्निर्माण का काम इसकी नींव तक ही **रुका** रहा। इस समय हाग्गै और जकर्याह भविष्यवक्ता यहूदियों को उत्साहित करने के लिए उठ खड़े हुए कि वे काम पर लौट जाएं।

अनुप्रयोग

जब मसीहियों को विरोध का सामना करना पड़ता है (अध्याय 4)

मेरी माँ अकसर कहा करती थी, "जो काम करने के योग्य है वह उचित कार्य है।" यह कहना भी उचित ही होगा: कुछ भला, कुछ उचित करना प्रारंभ करो और जो आप कर रहे हैं उसका कोई न कोई विरोध करना आरंभ करेंगे।

परमेश्वर के कार्य के साथ भी कुछ ऐसा ही होता है। कलीसिया आरंभ होते ही, परमेश्वर के लोगों ने विरोध का सामना किया (देखें प्रेरितों 4; 5)। प्रकाशितवाक्य की पुस्तक, परमेश्वर की योजना और परमेश्वर के लोगों का शैतान द्वारा विरोध के बारे में है। नया नियम हमें इस बात का भी आश्वासन देता है कि मसीही होने के नाते, भक्तिमय जीवन जीने के कारण हम सताए जाएंगे (2 तीमु. 3:12) - और सताव इस बात का निश्चित चिह्न है कि हम शैतान के विरोध का सामना कर रहे हैं।

इस समय और इसके पश्चात आने वाले दशकों में यहूदियों को विरोध का सामना करना पड़ा था। यही विरोध एज्रा 4 की विषयवस्तु है। सबसे पहले, यह अध्याय यह बताता है कि किस प्रकार यहूदियों के शत्रुओं ने काम में हाथ बटाना चाहा; लेकिन, जब यहूदी अगुवों ने उनकी इस कार्य में सहायता लेने से इनकार किया तो उन्होंने इस बात का इस पुरजोर विरोध किया कि यहूदियों को दारा के शासनकाल, लगभग 520 ई.पू. तक मन्दिर का कार्य रोके रहना पड़ा (4:1-5, 24)। तब यह एक और घटना के बारे में बताता है, जो लगभग पचास वर्ष पश्चात घटित हुआ, जब शत्रुओं ने यहूदियों के विरुद्ध दोषारोपण करते हुए क्षयर्ष को चिट्ठी लिखी - यद्यपि लेखक इसके परिणाम के बारे में कुछ नहीं लिखता है (4:6)। तीसरी बात, यह तीस या चालीस वर्ष पश्चात एक या दो और घटनाओं का विश्लेषण करता

है जब उस देश के लोगों के प्रधानों ने, गैर इस्राएली लोग जो यहूदियों के निकट रहते थे, अर्तक्षत्र को चिट्ठी लिखी कि यहूदी लोग यरूशलेम की शहरपनाह का पुनः निर्माण कर रहे हैं। इसका यह परिणाम निकला कि बलपूर्वक यहूदियों से उनका कार्य रुकवाया गया (4:7-23)।

एज्रा 3 में मन्दिर की नींव डाले जाने की खुशखबरी के पश्चात अध्याय 4 में कुछ भी अच्छी खबर नहीं पाई जाती है। जैसे ही यहूदियों ने परमेश्वर का काम आरंभ किया, उनका लगातार विरोध किया गया। फिर भी, जब भी हम विरोध का सामना करते हैं, तो इस अध्याय से कुछ पाठ सीख सकते हैं।

विरोध की ये घटनाएं हमें क्या सिखाती हैं?

विरोध की अपरिहार्यता। सबसे पहले हमें यह सीखना होगा कि परमेश्वर के कार्य का सदैव विरोध किया जाता रहा है। जो अच्छे कार्य हो रहे हैं उसका विरोध करने के लिए शैतान किसी न किसी को खड़ा करेगा। जब यीशु ने यह कहा, "धन्य हैं वे, जो धर्म के कारण सताए जाते हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है" तो मसीहियों को विरोध की अपेक्षा करनी चाहिए (मत्ती 5:10; देखें 5:11, 12; 10:16-28)।

विरोध का परिणाम। हमें यह भी सीखना चाहिए कि परमेश्वर के कार्य को विरोध करके रोका भी जा सकता है। ऐसे परिस्थिति में, विरोध के कारण मन्दिर का कार्य पन्द्रह से सोलह वर्षों तक रुका रहा। परमेश्वर के लिए बनाई गई बड़ी-बड़ी योजनाओं के बारे में हमने सुना है लेकिन जो बाद में छोड़ दिया गयाः एक गिरजा घर की आवश्यकता थी लेकिन नहीं बनाया गया; कलीसिया की बढ़ोत्तरी के लिए शिक्षा देने की जो योजना बनाई गई थी वह छोड़ दी गई है; खोए हुओं को ढूँढने का प्रयास इस कारण छोड़ दिया गया क्योंकि लोगों ने उसके लिए समय नहीं निकाला और उसे भी छोड़ दिया गया।

1960 के आरंभिक दिनों में मेरा परिवार वेबर्न, साक्सासेवान, कनाडा में रहता था। हमारे घर से लगभग 60 मील की दूरी पर एक छोटा किंतु सुन्दर गिरजा घर था जिसमें इस प्रकार लिखा था "चर्च आफ ख्राईस्ट।" जबकि वहां कोई आराधना नहीं होती थी। आरम्भिक दिनों में विश्वासियों की एक छोटी टोली वहाँ आराधना किया करती थी; जिसे दक्षिण में अन्य कलीसियाओं ने उस भवन का निर्माण करने या खरीदने में सहायता की थी। वहाँ कुछ घटनाएं ऐसी घटित हुई कि कलीसिया ने वहाँ आराधना करना बंद कर दी।

हर एक असफल प्रयास का परिणाम सक्रिय विरोध नहीं था जिसका यहाँ वर्णन किया गया है। यद्यपि, हर एक मामले में परिणाम एक जैसा ही था जैसे कि मन्दिर के पुनःनिर्माण में हुआ थाः परमेश्वर का कार्य पूरा हुए बिना रुक गया।

विरोध सफलता कैसे प्राप्त करती है। इसके साथ ही, हम यह सीख सकते हैं कि *कैसे* विरोध परमेश्वर के कार्य को रोक सकता है। मन्दिर का पुनर्निर्माण विरोधियों द्वारा यहूदियों को "निराश" और "डराने" के कारण रूका (4:4, 5)। भय और निराशाजनक स्थिति ऐसे दो कारण हैं जो हमें परमेश्वर का कार्य करने से रोकती है।

1. भय हमें परमेश्वर द्वारा दिए गए कार्य को पूरा करने से रोक सकती है। उदाहरण के लिए, यदि हम किसी ऐसे स्थान में रहते हैं जहाँ मसीही होना गैर कानूनी है, तो वहाँ डरना स्वाभाविक है। इसका यह परिणाम हो सकता है कि हम परमेश्वर के लिए कार्य करना बन्द कर देंगे। दूसरे प्रकार के भय हमको भी प्रभावित कर सकते हैं। हम इस बात से भी भयभीत हो सकते हैं कि यदि हम कोई अलोकप्रिय सिद्धांत प्रचार करते हैं तो हमको अजीब समझा जाएगा - और तब वह भय हमको उस कार्य को करने से रोके रहेगा जो परमेश्वर हमसे करवाना चाहता है। हम यहूदियों के कुछ उन अगुवों के समान हो सकते हैं जिन्होंने यीशु पर विश्वास तो किया लेकिन उसका अंगीकार इस भय के कारण नहीं कर सके कि कहीं वे आराधनालय से निकाल न दिए जाएं (यूहन्ना 12:42, 43)। जो हमें सबसे अधिक पसंद है जैसे - हमारा परिवार, हमारे घर, हमारे मित्र, हमारी सम्पत्ति, हमारा जीवन - को खोने का भय होता है - वह हमें अपने आपको प्रभु को पूर्णरूप से समर्पित करने से रोकेगा (देखें मत्ती 16:24, 25; लूका 14:26-33)। भय ने एक तोड़े वाले नौकर को अपना तोड़ा भूमि पर गाड़ने के लिए विवश कर दिया, और उसकी निष्क्रियता उसके दण्ड का कारण हुई (मत्ती 25:24-30)। भय ने इस्राएलियों को प्रतिज्ञा के देश में प्रवेश करने से रोका और एक पूरी पीढ़ी को जब तक वे न मरे जंगल में भ्रमण करने दिया (गिनती 14:35)!

इससे भी बढ़कर, असफलता का भय हमको परमेश्वर के लिए बड़े-बड़े कार्य करने से रोकता है। "क्या होगा यदि यह परियोजना असफल होती है तो? यदि मैं असफल हो गया तो क्या होगा?" ये कुछ ऐसी बातें हैं जो हमें बहुधा परमेश्वर का कार्य प्रारंभ करने या जारी रखने से रोकती हैं।

ऐसे भय के साथ जो हमको बहुधा अपंग बनाते हैं, क्या करना चाहिए? ऐसे स्थिति में हमें और अधिक विश्वास की आवश्यकता होगी (मत्ती 8:26)! हमें यह विश्वास करना होगा कि "परमेश्वर से सब कुछ हो सकता है" (मत्ती 19:26) और "जो हमारी ओर हैं, वह उन से अधिक हैं, जो उनकी ओर हैं" (2 राजा. 6:16)। हमें यह भरोसा करने की आवश्यकता है कि "यदि परमेश्वर हमारी ओर है," तो कोई भी हमारे विरुद्ध नहीं खड़ा हो सकता है (रोमियों 8:31-39)। हमें यह मानना होगा कि परमेश्वर "जो ऐसा सामर्थी है, कि हमारी विनती और समझ से कहीं अधिक काम कर सकता है, उस सामर्थ्य के अनुसार जो हम में कार्य करता है" (इफि. 3:20)। उसके द्वारा "जो मुझे सामर्थ्य देता है उस में मैं सब कुछ कर सकता हूँ" (फिलि. 4:13)। यदि हम परमेश्वर और उसकी सामर्थ्य में केंद्रित रहते हैं तब विरोध के कारण उत्पन्न स्थिति भी उसके कार्य को रोक नहीं सकती है।

2. संभवतः भय से अधिक दुर्बल करने वाली बात निराशा थी। हो सकता है कि भय परमेश्वर के कार्य को पूरा होने से रोकता था, जबकि निराशा ने परमेश्वर के लोगों को दसों बार कार्य करने से रोका। उदाहरण के लिए, एक भला कार्य एक मण्डली से प्रारंभ होता है - या यूँ कहें घर-घर जाकर लोगों से मिलने का कार्यक्रम कुछ समय तक तो चलता रहता है। यद्यपि, समय गुजरने के साथ ही घर-घर जाकर लोगों से मिलने का कार्यक्रम तब रुक जाता है जब केवल मुट्ठी भर लोग ही

लोगों से मिलने जाते हैं। इन मुट्ठी भर लोगों के साथ क्या होता है? वे निराश हो जाते हैं, लोगों के घर जाकर मिलने से रुक जाते हैं, और कुछ भला होने से पहले ही यह कार्यक्रम रुक जाता है।

निराशा परमेश्वर के लोगों के लिए सदैव बड़ी समस्या रही है। संभवतः निराश हुए संत का सर्वोत्तम उदाहरण एलिय्याह है, कार्मेल पहाड़ पर बाल देवता के पुजारियों पर जय पाने पर भी वह परमेश्वर के प्रति सरकार को सकारात्मक नीति से प्रभावित करने में असफल रहा था। इसके विपरीत, रानी ईज़ेबेल उसे मारना चाहती थी। एलिय्याह निराश, हताश, पराजित, मरने को तैयार, भाग जाता है (1 राजा. 18; 19)।[16] यदि एलिय्याह निराश हो सकता है तो आज कोई भी परमेश्वर का संत निराश हो सकता है!

क्योंकि परमेश्वर जानता था कि हम निराश होंगे, इसलिए उसने नया नियम में हमें बार-बार एक दूसरे को उत्साहित करने के लिए कहा है (1 थिस्स. 5:11, 14; इब्रा. 3:12, 13; 10:25)। निराश होने से कैसे बचें ताकि हम हार न मानें?

हमें यह सदैव स्मरण रखना होगा कि परिस्थिति जैसे दिखाई देती है वह वैसे ही हमेशा नहीं रहेगा। यही एलीशा का अपने दास को दिए संदेश है जब उसने कहा, "जो हमारी ओर हैं, वह उन से अधिक हैं, जो उनकी ओर हैं" (2 राजा. 6:16)। यह मुझे ऐसा जान पड़ता है कि एक प्रचारक या शिक्षक के रूप में कुछ अदभुत नहीं कर रहा हूँ, बल्कि वास्तव में मैं बीज बो रहा हूँ जो सौ गुणा फल लाएगा। यह ऐसा भी लगेगा कि कुछ विशिष्ट परिश्रम करना व्यर्थ होगा, अन्यथा समय ही इसके परिणाम के बारे में बताएगा।

हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि हम एक दीर्घकालीन कार्य में संलग्न हैं। जब हम मसीही बनते हैं तो तीन या चार वर्ष के शपथ पत्र पर हस्ताक्षर नहीं करते हैं; हम तो जीवन भर के लिए अपने शपथ पत्र दाखिल करते हैं। हमें जल्दी या तुरंत दिखाई देने वाली परिणाम के बजाय आने वाले परिणाम की प्रतीक्षा करनी होगी। हमें अपने आपको यह स्मरण दिलाना होगा कि इस जीवन में प्रभु के लिए हमारे कार्य का परिणाम थोड़ा ही क्यों न हो, लेकिन हम उससे यह सुनने की आस लगा सकते हैं, "धन्य हे अच्छे और विश्वासयोग्य दास" और सदा सर्वदा के लिए उसके साथ रहें (मत्ती 25:19-23)।

भय और निराशा ने यहूदा के विरोधियों को उन पर हावी होने का अवसर प्रदान किया और उन्हें मन्दिर के कार्य को रोकना पड़ा। हमें यह ध्यान रखना होगा कि यह मानवीय असफलता के गुण हैं। मन्दिर का निर्माण रुक गया - यह इसलिए नहीं हुआ कि देश के लोग या फारस की सरकार परमेश्वर के लोगों से अधिक बलशाली थे, या फिर फारस के देवी-देवता यहोवा परमेश्वर से अधिक बलशाली थे, बल्कि यह इसलिए ऐसा हुआ क्योंकि लोग भयभीत व निराश हो गए थे (4:4)। उसी तरह, जब हम भी भय या निराशा के कारण हियाव छोड़ देते हैं, तो ऐसे परिस्थिति में परमेश्वर हमें नहीं छोड़ता है, बल्कि हम स्वयं परमेश्वर को पराजित करते हैं। जब तक हम शैतान को परमेश्वर का कार्य रोकने की अनुमति न दें वह उस कार्य को नहीं रोक सकता है।

सारांश: एज्रा 4 एक दुःखभरी कहानी बताती है। परमेश्वर के लोगों ने मन्दिर का पुनर्निर्माण आरम्भ किया, लेकिन विरोध उठा। इस विरोध के कारण यहूदी लोग भयभीत व निराश हुए और कार्य रुक गया। भय और निराशा का परिणाम असफलता होती है। यह अध्याय अपने आप में एक पराजय की कहानी बताता है। यद्यपि, इस विषय पर यह परमेश्वर का अंतिम शब्द नहीं है। इसके अगले अध्याय में हमें यह देखने को मिलता है कि कार्य दोबारा कैसे प्रारम्भ हुआ और अंततः कैसे पूर्ण हुआ। संभवतः हमको इस पराजय की कहानी के साथ इस तथ्य को भी जोड़ देना चाहिए: जब हम परमेश्वर के लिए कार्य करते हैं तो कोई भी असफलता अंत नहीं है। अंततः, किसी भी रीति से, इस जीवन या आने वाले जीवन में, हम विजयी होंगे। "जिस ने हम से प्रेम किया है, जयवन्त से भी बढ़कर हैं" (रोमियों 8:37; KJV)।

जब परमेश्वर के लोगों ने भय और निराशा को अपने जीवन में स्थान दिया तो कितने बड़े-बड़े कार्य रुक गए? हमें आज जिसकी आवश्यकता है वह परमेश्वर की सामर्थ्य और धीरज पर भरोसा करना है, चाहे दिन में बादल कितने ही घने क्यों न हो, यह विश्वास करते हुए कि अंत में परमेश्वर ही विजय देगा!

जब सहयोग का अर्थ समझौता होता है (4:1-4)

एज्रा 4:1-4 के अनुसार, देश के लोगों ने मन्दिर का पुनर्निर्माण कर रहे यहूदियों को सहायता देनी चाही: "हमें भी अपने संग बनाने दो; क्योंकि तुम्हारे समान हम भी तुम्हारे परमेश्वर की खोज में लगे हुए हैं, और अश्शूर का राजा एसर्हद्दोन जिसने हमें यहाँ पहुँचाया, उसके दिनों से हम उसी को बलि चढ़ाते भी हैं।" इस्राएल के प्रधानों के मुख्य-मुख्य पुरुषों ने उत्तर दिया, "हमारे परमेश्वर के लिये भवन बनाने में, तुम्हारा हम से कोई सम्बन्ध नहीं ...।" दूसरे शब्दों में उन्होंने उनकी सहायता लेने से इनकार कर दिया।

इस्राएल के प्रधानों के मुख्य-मुख्य पुरुषों का उस कार्य को जिसे हम एक संगी विश्वासी का उसके पड़ोसी के प्रति सहयोग कह सकते हैं, क्यों टाल दिया? इसके कई संभावित उत्तर हो सकते हैं, लेकिन निस्संदेह इसका मुख्य कारण यह हो सकता है कि यदि उन्होंने "शत्रुओं" (4:1) के सहयोग पर विश्वास किया होता तो यह उनके विश्वास के साथ समझौता करने जैसा होता। इन बहु-ईश्वरवादियों के साथ सहभागी होने से वे उन्हें मूर्तिपूजा करने के लिए प्रभावित कर सकते थे और उनसे अपने देवी-देवताओं की आराधना करवा सकते थे। इसलिए, इसका उचित उत्तर "नहीं" ही हो सकता है।

आज भी मसीहियों को कुछ ऐसे निर्णय लेने होते हैं जिसमें अमित्रतापूर्ण भाव दिखाई देता है। यदि वे लोग जो हमारे विश्वास में थोड़ा बहुत सहभागी होते हुए दिखाई देते हैं, लेकिन झूठी शिक्षा भी देते हैं, यदि उनके साथ सहयोग दिखाते हैं, तो ऐसे लोगों को कभी-कभी उनके सहयोग के लिए "नहीं" भी बोलना चाहिए। समस्या यह है कि सहयोग लेना हमें समझौता करने के लिए विवश कर सकता है। परमेश्वर के लोगों के लिए सत्य को थामे रहना अति महत्वपूर्ण है और उनके लिए

दूसरे लोग एवं उनके विश्वास को स्वीकार करने के बजाय झूठी शिक्षा का सामना करना बेहत्तर होगा।

समाप्ति नोट

[1]डेरेक किडनर, *एज्रा एण्ड नहेम्याह,* द टिंडेल ओल्ड टेस्टामेंट कमेंट्रीज (डॉनर्स ग्रूव, इलनोय: इण्टर-वर्सिटी प्रेस, 1979), 48. [2]रीनहार्ड पम्मर, "सामारीटन्स," में *दि ओक्सफोर्ड एनसाइक्लोपीडीया आफ आर्खेयोलोजी इन द नियर ईष्ट* (न्यू यॉर्कः ओक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, 1997), 4:469. [3]शल्मनेसेर पंचम अश्शूर का वह राजा था जिसने इस्राएल पर चढ़ाई आरंभ किया था (2 राजा. 17:3-5; 18:9)। स्पष्टतया, उसका उत्तराधिकारी सार्गोन द्वितीय, राजधानी को नष्ट करने व इस्राएलियों को बंधुआई में ले जाने के लिए जिम्मेदार था। [4]ए. लीओ ओप्पेनहीम, अनुवाद, "एस्सारहेद्दोन (680-669): द सायरो-पैलेस्टीनियन कैम्पेन," में *एनसियंट नियर ईस्टर्न टेक्स्ट्स रिलेटिंग टू दि ओल्ड टेस्टामेंट,* तीसरा संस्करण, एड. जेम्स बी. प्रिचार्ड (प्रिंसटन, न्यू जर्सीः प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1969), 290. [5]एडविन एम. यामौची के अनुसार "उस देश के लोग" (עַם־הָאָרֶץ, *आम हाआरेत्स*) वक्तव्य का अर्थ "अलग समूह, अलग समय एवं परिस्थितियों में" है। (एडविन एम. यामौची, "एज्रा-नहेम्याह," में *दि एक्सपोजीटर्स बाइबल कमेंट्री*, खण्ड. 4, *1 राजा-अय्यूब*, एड. फ्रैंक ई. गैबलीन [ग्रैंड रैपिड्स, मिशीगनः जॉडरवैन पब्लिशिंग हाऊस, 1988], 627.) [6]एज्रा 4:12 में, यहूदियों के शत्रुओं ने कहा कि यहूदी लोग "हमारे पास यरूशलेम को पहुँचे हैं।" यह भाषा यह सुझाव प्रस्तुत करता है कि जब यहूदी लोग यरूशलेम लौटे तो वे पहले से ही वहाँ मौजूद थे। [7]उनका यह कहना कि उन्होंने यहूदियों के परमेश्वर की खोज की है और इस देश में आने के बाद से ही उन्होंने उसको बलिदान चढ़ाया है (4:2) यह ठीक हो सकता है, लेकिन उनकी आराधना व्यवस्था के अनुरूप नहीं था। परमेश्वर ने अपने अनुयायियों को केवल उसी की ही आराधना करने का आदेश दिया था, लेकिन प्राचीन दक्षिण पूर्व के लोग अपने स्थानीय देवता को प्रमुख मानते हुए अन्य देवी-देवताओं की भी उपासना किया करते थे। [8]"निराश" करने का अक्षरशः अर्थ "हाथों को निर्बल" करना है। [9]कैम्बूसीस, जिसका इस पाठ में वर्णन नहीं किया गया है, ने कुस्रू और दारा के शासनकाल के बीच में शासन किया (530-522 ई.पू.)। स्पष्टतया, गौमाता ने भी इस शासनावधि के अंत में कुछ महीनों के लिए राज्य किया (में 522 ई.पू.)। [10]जोसेफ़स ने लिखा कि सूरिया और फूनिसिया के अधिकारियों को राजा कैम्बूसीस से यहूदियों के विरुद्ध शिकायत करने के लिए घूस दिया गया। (जोसेफ़स *एन्टीकीटीज* 11.2.1.)

[11]"क्षयर्ष" नाम जो एस्तेर की पुस्तक में भी पाया जाता है, वह फारसी नाम ख्शायार्शा का इब्रानी समान्तर नाम है। यूनानी में, यह राजा Xerxes नाम से जाना जाता है। (आर. के. हैरीसन, "अहासूरस," में *इंटरनेशनल स्टैंडर्ड बाइबल एनसाइक्लोपीडीया,* संशोधित संस्करण, एड. ज्योफरी डब्ल्यु. ब्रोमिली [ग्रैंड रैपिड्स, मिशीगनः विलियम बी. एर्डमैंस पब्लिशिंग कम्पनी, 1979], 1:76.) [12]टीकाकारों की सामान्य धारणा यह है कि आयतें 7 और 8 दो अलग-अलग पत्रों को संदर्भित करता है, जिनका विभेद अलग-अलग लेखकों के कारण किया जाता है। फिर भी, इस बात की कम संभावना है कि ये दोनों आयतें एक ही पत्र को संदर्भित करता है। आयत 7 में वर्णित लोग वे प्रधान हो सकते हैं जिन्होंने आयत 8 में वर्णित दो व्यक्तियों के साथ, जो राजा को शिकायत पत्र भेजने के लिए उपयोगी सिद्ध हुए होंगे, यहूदियों के विरुद्ध शिकायत करना प्रारंभ किया होगा। संभवतः यह विचारधारा इस बात से अधिक मजबूत ठहरता है कि आयत 7 का अंतिम भाग ताबेल और उसके सहयोगियों द्वारा अरामी भाषा में लिखा गया था और 4:11-16 में लिखा पत्र भी अरामी भाषा में ही है। [13]किडनर, 136. [14]फारस का साम्राज्य लगभग बीस राजनैतिक/भौगोलिक क्षेत्रों का भूभाग था, जो उनमें से प्रत्येक "क्षत्रप" के नाम से जाना जाता था। हर एक क्षत्रप छोटी-छोटी इकाइयों में बंटा हुआ था। यहूदा उनमें से एक छोटी ईकाई था जो "महानद के उस पार" के बड़े भूभाग का एक

भाग था। (देखें एम. जे. ड्रेसडेन, "पर्सिया, हिस्ट्री एण्ड रीलीजन आफ," में *दि इंटरप्रेटर्स डिक्शनरी आफ द बाइबल,* एड. जॉर्ज आर्थर बटरीक [नैशविलः अबिंगदन प्रेस, 1962], 3:742.) [15]"हम राजमहल की सेवा करते हैं" का अक्षरशः अर्थ "हम राजमन्दिर का नमक खाते हैं" अर्थात् "[हमें] राजकोष से तनख्वाह मिलता है।" अंग्रेजी भाषा का "salary" शब्द लातिनी भाषा के *सेलेरियम* शब्द से उधृत है जिसका अर्थ "नमक का पैसा" है। (कीथ एन. सोविल, *एज्रा - नहेम्याह,* द कॉलेज प्रेस एनआईवी कमेंट्री [जॉप्लीन, मिसूरीः कॉलेज प्रेस पब्लिशिंग कं., 2001], 77-78.) [16]यिर्मय्याह की निराशा की कहानी भी पढ़ें (यिर्म. 20:7-9)।